International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-1 Jan-Feb-2022 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

हिंदी के समकालीन स्त्री कथा लेखन में बदलते सामाजिक मूल्य

मुम्पा मरबम
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
वेंकटेश्वर मुक्त विश्वविद्यालय, पापुम पारे
अरूणाचल प्रदेश

डॉ. सोनिया यादव
आचार्या एवं विभागाध्यक्षा, हिंदी,
वेंकटेश्वर मुक्त विश्वविद्यालय, पापुम पारे
अरूणाचल प्रदेश

हिन्दी का प्रमुख महिला कथाकारों ने बदलते हुए सामाजिक मूल्यों का चित्रण भी अपने कथासाहित्य में किया है। वस्तुतः सामाजिक मूल्य हैं क्या? समाज में प्रचलित मानदण्ड और कसौटी। प्रत्येक समाज का स्वयं का एक युगीन परिवेश और सामाजिक नियमन होता है, उसके अपने कुछ मूल्य और अनुशासन होते हैं। बदलता हुआ समय बदलती हुई परिस्थितियाँ अनिवार्यतः समाज में अनेक प्रकार के बदलाव करती हैं। उदाहरणस्वरूप औपनिवेशिककालीन भारत की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक और नैतिक परिस्थितियाँ, मान्यताएँ, मूल्य, संस्कार, रूढ़ियाँ, आडम्बर और सम्बन्ध बिल्कुल भिन्न प्रकृति के थे और भारत की आजादी तथा वैश्विक बदलाव, आधुनिकता, शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान, आधुनिक तकनीक और शिक्षा पद्धति के प्रभाव के कारण अनेक प्रकार के सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन राष्ट्र, समाज और समुदाय में हुए। इन परिवर्तनों, बदलती हुई आस्थाओं और मूल्यों का बहुआयामी प्रभाव भारतीय समाज पर हुआ। इससे समाज का प्रत्येक समुदाय वर्ग और जनसमूह प्रभावित हुआ। उनमें कुछ रूपान्तकारी बदलाव हुए। ये बदलाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकृति के थे। स्वराज की संकल्पना और मोहभंग के बीच प्रत्येक वर्ग के बीच स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय और साधना सम्पन्नता, समरसता और समानता की तीव्र अकुलाहट थी। यह अकुलाहट गरीब और अमीर में भी थी, शिक्षित और अशिक्षित में थी, स्त्री और पुरुष में भी थी। अपने जीवन में अपेक्षित बदलाव की कामना से भरे हुए अनेक वर्ग थे जिसमें विशाल स्त्री आबादी यानी आधी आबादी भी थी। संवेदनशील और सजग दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण स्त्री समुदाय अपनी सदियों की शारीरिक, मानसिक और रूढ़िगत गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर उन्मुक्त आकाश का निर्माण करना चाहती थी। जीवन पद्धतियों में बदलाव के साथ ही तीव्रता के साथ सामाजिक मूल्यों में भी बदलाव हो रहा था।

स्त्री की सामाजिक–आर्थिक–पारिवारिक और राजनैतिक स्थितियों के साथ ही स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में भी बदलाव आ रहे थे। स्त्री और ज्यादा मुखर होकर अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही थी। सदियों की जड़–विगलित पितृसत्तात्मक और पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था के प्रति उसमें गहरा आक्रोश था और वह प्रत्येक स्तर पर अपनी आनुपातिक भागीदारी का आह्वान कर रही थी। इस दौरान उसे अनेक कठिनाइयों और अवरोधों का भी सामना करना पड़ा था और आज भी उसका संघर्ष गतिमान है, उसकी अस्मितामूलक लड़ाई आज भी जारी है। इन सभी मूल्यगत बदलावों की सजग पड़ताल करते हुए स्त्री लेखिकाओं ने अपनी कथात्मक रचनाओं में ऐसे मूल्यों, आदर्शों, यथार्थों की न केवल संकल्पना की है, बल्कि उनका यथार्थ और व्यवहारिक चित्रण करते हुए प्रश्न भी निर्मित किए हैं और समाधान भी सुझाया है। आजादी के पूर्व ही महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान से लेकर अनेक महिला लेखिकाओं ने मार्ग पूर्व में ही प्रशस्त कर दिया था। इसी मार्ग पर क्रमशः आगे बढ़ते हुए इन महिला कथाकारों और चिंतकों ने स्त्री–जीवन के सरोकारों को अपने साहित्य में प्रमुखता से रूपायित किया है।

कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, निरूपमा सेवती, राजी सेठ, मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, मधु कॉंकरिया, जया जादवानी, सिम्मी हर्षिता, रमणिका गुप्ता,

आकांक्षा, अल्पना मिश्र, शर्मिला बोहरा जालान, नमिता सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, नीलाक्षी सिंह, प्रत्यक्षा, वंदना और अनेक महिला कथाकारों ने अपने कथा–साहित्य में बदलते सामाजिक मूल्यों की सम्यक और व्यवहारिक पड़ताल किया है। इनकी रचनाओं में हो रहे सामाजिक बदलावों का सूक्ष्मता और संवेदना के साथ मनोविश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत लेखिकाओं में प्रख्यात महिला कथाकार कृष्णा सोबती जी का नाम अत्यंत ही समादृत है। उनकी रचनाओं में बदलते सामाजिक मूल्य और उनके स्त्री–जीवन पर प्रभाव को अत्यंत संजीदगी के साथ दर्शाया गया है।

कृष्णा जी का साहित्य परम्पराबोध से भी जुड़ा हुआ है, परन्तु उसमें क्रमशः आधुनिकता का भी समावेश होता गया। प्रेम में उत्पन्न त्रिकोण और वैवाहिक जीवन में उत्पन्न होते नवीन मूल्यों को भी उन्होंने अपने साहित्य में

रूपायित किया है। इस दृष्टिकोण से उनकी कहानी 'कुछ नहीं, कोई नहीं' की कथानायिका शिवा का जीवन दृष्टिगत है। शिवा बेहतर जीवन की तलाश में अपने पूर्व प्रेमी का वरण अपने पति को छोड़कर करती है, परंतु उसके हाथ में शून्य ही आता है। अंततः उसका जीवन निस्सार तथा प्रेमहीन ही रह जाता है। प्रेम के बदलते स्वरूप, कुण्ठा, हताशा, बेचैनी, अवसाद तथा एकाकीपन आदि को उन्होंने अपने कथा–साहित्य में नारी–जीवन की प्रमुख समस्याओं के रूप में चित्रित किया है। स्त्री की इन स्थितियों को उजागर करने के साथ ही उसके व्यवहारिक समाधान का प्रयास भी उनके द्वारा सृजित कथानक में दिखाई देता है। उनकी कथानायिकाएँ बदलाव और विद्रोह के साथ ही नये मूल्यों की आकांक्षी हैं। 'सिक्का बदल गया' कहानी की पात्र 'शाहनी', आजादी शम्मो जान की कहानी की पात्र 'मुन्नी', 'बादलों के घेरे' की पात्र मन्नो आधुनिक जीवन में बदलते मूल्यों और प्रवृत्तियों का प्रतीक हैं। 'बादलों के घेरे' कहानी की मन्नो तपेदिक से ग्रस्त है और भुवाली में एकाकी जीवन सेनेटेरियम में काट रही है।

मन्नो को अपने रोग की वजह से परिवार में भी घोर अलगाव और एकाकीपन का अनुभव करना पड़ता है। मन्नो इस बदलते सामाजिक मूल्य और प्रवृत्ति का गहराई से अनुभव करती है। बदलते दौर में व्यक्ति भी वस्तु के रूप में तेजी से परिवर्तित होता जा रहा है, उसका सामाजिक मूल्य क्षरित होता रहा जा रहा है। सम्बंधों की उष्मा घटती जा रही है। मन्नो बीमारी में खुद को उत्साह में रखना चाहती है और अपनी निकट आती मृत्यु का अनुभव करती हुई जीवन के सपने बुनती है। ''मन्नो का तन रोग जर्जर है, मन तो नहीं। मन में यौवन का ज्वार है, प्रेम की उफनती तरंगें हैं, सपनों की तैरती डोंगियाँ हैं, हँसती रंगीन चाहते हैं। रवि के लिए वह जर्सी नहीं बुनती, रवि के साथ अपने साँझे भविष्य को बुनती है।''[1] कृष्णा सोबती की एक और प्रमुख कहानी है–'दादी अम्मा'। बदलते परिवेश में वृद्धों की जिन्दगी में आई एकरसता, एकाकीपन, पारिवारिक स्नेह की कमी और दुःखों की अधिकता को लेकर यह कहानी कृष्णा सोबती ने लिखी है। वृद्धों को बदलते हुए दौर में महत्वहीन तथा अनुपयोगी समझा जाने लगा है और उन्हें पारिवारिक व्यवस्था में समय और सम्मान नहीं मिल पा रहा है। यह स्थिति अत्यंत दुखद और कारुणिक है। जो वृद्ध घर और परिवार रूपी संस्था को सजाने और सँवारने में अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर देते हैं, वही आज परिवार और अपनों की बेरूखी का शिकार होकर अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। दादी और दादा की अवस्था जीर्ण हो गई है। दादा बीमारी की अवस्था में पड़े हुए हैं, उन्हें देखने वाला, उनकी तीमारदारी करने वाला कोई भी

नहीं है। दादी स्वयं अकेले दादा की देखभाल तथा सेवा–सुश्रूषा कर रही हैं। वह अपने पोते से दादा के संदर्भ में कहती हैं–''कभी दादा की ओर भी देख लिया करो, कब से उनका जी अच्छा नहीं। जिसके घर में भगवान के दिए बेटे–पोते हों, वह इस तरह बिना दवा–दारू के पड़े रहते हैं।''[2] बदलते हुए सामाजिक मूल्य न केवल कृष्णा जी की कहानियों में ही चित्रित हैं, अपितु उनके

उपन्यास साहित्य में भी वृहत्तर स्तर बदलते सामाजिक मूल्यों की विवेचना की गई है। उनके उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' की प्रमुख महिला पात्रा पाशो और उसकी जीवन–स्थितियों के माध्यम से बदलते सामाजिक मूल्यों की प्रस्तुति हुई है। पाशो अपनी माँ से दूर अपने ननिहाल में है क्योंकि उसकी माँ शेखों के यहाँ जाकर बैठ गई है। पाशो का जीवन अत्यंत दुःख और संघर्ष से भरा है। मारपीट, अभद्रता, दुर्व्यवहार तथा दिनभर हाड़–तोड़ श्रम ही पाशो की जिंदगी का हासिल बन कर रह गया है। पाशो जिस चीज (घटना) के लिए जिम्मेदार नहीं है, वह कलंक भी उसे अपने माथे पर ढोना पड़ रहा हे। न उसे बेहतर भोजन मयस्सर है, न ही शिक्षा, न ही जीवन की स्वतंत्रता। उस पर अनेक बंदिशे हैं। पाशो को करीम से प्रेम हो जाता है। यह जानते ही उसका पंजाबी खत्रियों का परिवार क्रुद्ध हो जाता है और उसके ऊपर पहरा और कड़ा हो जाता है। ननिहाल में पाशो को जहर देकर मारने की कोशिश की जाती है। उसका हृदय टूट जाता है। अंततः वह अपनी माँ के यहाँ जाने का निर्णय लेती है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु इतना विराट निर्णय लेती है। ''पाशो का अपने ननिहाल से भागना उसका स्वयं को सुरक्षित करने को उठाया गया पहला साहसपूर्ण कदम था। सोबती द्वारा यहाँ नारी की अस्मिता उस रूप में दिखाई देती है जहाँ नारी ने स्वयं को इतना जागरूक और सचेत कर लिया था कि वह अब 'मौहरो' से नहीं भरना चाहती थी, जिंदा रहने की ललक ही उसे अपनी माँ यानी 'शेखों' के घर भागने को मजबूर कर देती है।''[3] माँ के यहाँ भी बरकत दीवान उसका बलात् शोषण करता है और उसे कहीं और बेच देता है। पाशो इसे अपनी नियति की विडम्बना मान कर स्वयं को असहाय अनुभव करती है–''पाशो का यह समझौता पराजित समझौता नहीं है। वह जय–पराजय को पार कर वीतरागी हो गई है। हर्ष, विषाद, सुख–दुःख, कामना–कल्पना से परे एक योगी की भाँति कर्मलीन है। वह अपनी स्थिति और नियति जान गई

है–''मैं भी चरखड़ी पर चढ़ी लज हूँ। कभी इस गागर तो कभी इस गागर।''[4] 'डार से बिछुड़ी' की पाशो जैसी नियति आज भी आजाद भारत में अनेक स्त्रियों की है जो अपने परिवार से दूर तथा परिवार में भी पीड़ित होने के लिए विवश हैं। उन्हें पुरुषवादी समाज के समक्ष अनिच्छित जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है।

'मित्रो मरजानी' उपन्यास की मित्रो बदलते सामाजिक मूल्यों का जीवंत प्रतीक है। वह ऐसी स्त्री की प्रतिनिधि है जो अपने शरीर और अपने मन के अस्तित्व को और जरूरतों को समझती है, जो सीधे समर्पण नहीं कर देती है बल्कि वह स्थितियों के समक्ष, जिम्मेदार व्यक्तियों और संस्थाओं (परिवार) के प्रति अपना विरोध प्रकट करती है। कुछेक आलोचकों की दृष्टि में 'मित्रो' का चरित्र 'निम्फोमेटिक' है, परंतु गम्भीरतापूर्वक विचार करने का यह आग्रह गलत प्रतीत होता है। मित्रो कभी अपने होने की गवाही या माफी नहीं माँगती हैं और न ही उसे माँगना चाहिए। मित्रो का व्यक्तित्व और चरित्र अत्यंत ही जीवंत प्रकृति का है, उसका हृदय कोमल और ईमानदार है। यदि पुरुष ही सत्व से हीन हो जाये, उसमें प्रेम या आकर्षण का तत्व न बचे, वह अनुरागी न रहे, स्त्री देहगंध और कामना की उसे पहचान न रहे तो स्वाभाविक रूप से स्त्री का चाहना में बहकर लता की तरह किसी अन्य शाख से लिपट जाना अपरिहार्य ही प्रतीत होता है। मित्रो की फड़कती हुई जवानी बाँहों का आसरा ढूँढ़ती है, उसमें अदम्य प्यास है पर उसका पति बल और पौरुष से हीन उसकी चाह को मिटा ही नहीं पाता। मित्रो तथाकथित महान सांस्कारिक परिवार से नहीं आती है, जहाँ अपनी अस्मिता और यथार्थ पर ताला लगा ही। उसकी माँ अपनी अभिव्यक्ति और इच्छा में आजाद खयाल व्यक्तित्व भी स्वामिनी है जहाँ देह की प्यास बुझाना स्त्री का अपना नैसर्गिक अधिकार माना गया है। मित्रो अपनी माँ को जब अपना दुखड़ा सुनाती है तो उसकी माँ उसके लिए जबर प्रेमी का इंतजार कर देती है। रात ढले भी मित्रो अपने यौवन की कुण्डी नहीं खोलती है और उसकी माँ अप्रतिभ रह जाती है। मित्रो अपनी जवानी अपने कच्चे साईं पर ही निछावर करने के लिए बेकरार है। मित्रो जैसे व्यक्तित्व की निर्मिति और परिणति तत्कालीन दौर में किसी लेखक–लेखिका के लिए बिल्कुल भी आसान नहीं थी, परंतु कृष्णा जी ने अत्यंत साहस का कालजयी मित्रो को बेबाक तरीके से गढ़ा। यह मित्रो आज विश्व साहित्य जगत की धरोहर है। मित्रो अपने पति के परिवार की आर्थिक समस्याओं को भी समझना और सुलझाना चाहती है–'न थाली बाँटते हो, न पीछे बाँटते हो, दिल के दुखड़े ही बाँट लो।''[5] समग्रतः कृष्णा सोबती के कथा–साहित्य के मूल्यांकन

और विवेचन से सहज ही स्पष्ट होता है कि उनके साहित्य में बदलते सामाजिक मूल्यों का तरलता और संजीदगी से मूल्यांकन हुआ है।

संदर्भ

1. एक नजर कृष्णा सोबती पर, रोहिणी, पृ. 53
2. दादी अम्मा, कृष्णा सोबती, सोबती एक सोहबत, पृ. 153
3. अस्मिता की तलाश, रूपा सिंह, पृ. 45
4. एक नजर कृष्णा सोबती पर, रोहिणी, पृ. 49
5. मित्रो मरजानी, कृष्णा सोबती, पृ. 46

I